Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

सतत विकास में सामाजिक जागरूकता की भूमिका

डॉ. मीनाक्षी मीना

सह आचार्य समाजशास्त्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर) राजस्थान

शोध सारांश

सतत विकास वर्तमान समय की एक महत्वपूर्ण वैश्विक आवश्यकता बन चुका है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, सामाजिक असमानता तथा आर्थिक संकट जैसी समस्याओं ने मानव समाज के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल सरकारी नीतियाँ पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि समाज की सक्रिय भागीदारी और सामाजिक जागरूकता भी अत्यंत आवश्यक है।

सामाजिक जागरूकता लोगों में पर्यावरण संरक्षण, संसाधनों के उचित उपयोग, स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति चेतना उत्पन्न करती है। यह शोध पत्र सतत विकास की अवधारणा, सामाजिक जागरूकता की भूमिका, इसके प्रभाव तथा सतत विकास के लिए आवश्यक उपायों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शब्द कुंजी - सतत विकास, जीवन-स्तर, जीवन-अवसर, पारिस्थितिकी, जागरूक, आर्थिक वृद्धि, संसाधन, सामाजिक जागरूकता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक उत्तरदायित्व, जलवायु परिवर्तन

अध्ययन के उद्देश्य - सतत विकास से समाज में किस प्रकार जागरूकता उत्पन्न होती को मालुम करना है।

1. सतत विकास की अवधारणा को स्पष्ट करना।
2. सामाजिक जागरूकता की भूमिका का अध्ययन करना।
3. सतत विकास में समाज की भागीदारी का विश्लेषण करना।
4. पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक चेतना के संबंध को समझना।
5. सतत विकास के लिए आवश्यक उपाय सुझाना।

AIJMR
Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

प्रस्तावना

21वीं सदी में विश्व तेजी से औद्योगिकीकरण, नगरीकरण और तकनीकी विकास की ओर बढ़ रहा है। इससे आर्थिक प्रगति तो हुई है, किन्तु पर्यावरणीय समस्याएँ भी बढ़ी हैं। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग, वनों की कटाई, प्रदूषण और जल संकट मानव जीवन को प्रभावित कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति में "सतत विकास" की अवधारणा महत्वपूर्ण हो जाती है। सतत विकास का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना है, बिना भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता किए। सतत विकास तभी संभव है जब समाज में पर्यावरण और सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता हो। सामाजिक जागरूकता लोगों को पर्यावरण संरक्षण, ऊर्जा बचत, जल संरक्षण और सामाजिक समानता के प्रति प्रेरित करती है।

आर्थिक वृद्धि की सीमाओं तथा विकास के प्रयत्नों के वारे में जैसे-जैसे पर्यावरण सम्बन्धी चेतना को वल मिलने लगा, सतत विकास की अवधारणा को विकास के क्षेत्र में एक प्रभावपूर्ण अवधारणा के रूप में देखा जाने लगा। इस अवधारणा का स्पष्ट रूप सबसे पहले 'पर्यावरण और विकास के विश्व आयोग' द्वारा प्रकाशित सन् 1987 की रिपोर्ट द्वारा सामने आया । इस आयोग द्वारा सतत विकास को एक ऐसे प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया गया, जिसके द्वारा वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ किसी तरह का समझौता नहीं किया जाता । यहीं से पर्यावरणवादियों, गैर-सरकारी संगठनों तथा स्वयं सरकार का ध्यान सतत विकास की अवधारणा की ओर आकर्षित होना आरम्भ हुआ। इसी अवधारणा पर विस्तार से विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने भी अनेक शीर्ष सम्मेलन के द्वारा मान्यता दी जाती है। दूसरी श्रेणी के संसूचकों का आधार तुलनात्मक (Relativistic Set) है, जिनका महत्व एक विशेष समाज अथवा व्यवस्था के अन्तर्गत अधिक होता है।

सार्वभौमिक संसूचकों (Universal Indicators) के संदर्भ में इडले सियर्स (Dudley Seers) के विचारों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिन्होंने मानव व्यक्तित्व के सार्थक विकास को सामाजिक विकास का वास्तविक आधार मानते हुए इसके विभिन्न संसूचकों पर प्रकाश डाला। वास्तव में, सार्वभौमिक संसूचकों को भी दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें पहले भाग का सम्बन्ध उन संसूचकों से है, जो मानव कल्याण की धारणा पर आधारित हैं, जबकि दूसरा भाग अथवा श्रेणी वह है, जो सामाजिक विकास के लिए समताकारी आधार को अधिक महत्वपूर्ण मानती है। उदाहरण के लिए, ड्रेनॉस्की (J. Drewnowski) (1970) ने पौष्टिक आहार, आवास की समुचित सुविधाओं में वृद्धि, स्वास्थ्य की दशा में सुधार, शिक्षा में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा तथा पर्यावरण की सुरक्षा को सामाजिक विकास के सार्वभौमिक संसूचकों के रूप में स्पष्ट किया। उनके अनुसार, मानव व्यक्तित्व की क्षमताओं

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

में इन्हीं आधारों पर वृद्धि की जा सकती है। सामाजिक विकास के समाताकरी पक्ष से सम्बन्धित संसूचकों का उल्लेख मार्क्स तथा एंगेल्स के विचारों में मिलता है। इन्होंने निजी सम्पत्ति की संस्था के उन्मूलन, वर्ग संरचना के परिवर्तन तथा राज्य की शक्ति की जगह जनसाधारण की शक्ति के उदय को समताकारी सामाजिक विकास का आधार माना । इनके अतिरिक्त थॉमस विस्कॉफ (Thomas Weisskopf) ने सामाजिक विकास के समताकारी आधारों में आर्थिक वृद्धि, राष्ट्रीय आय एवं जीवन अवसरों की समानता तथा आत्मनिर्भरता को महत्वपूर्ण संसूचकों के रूप में स्पष्ट किया । आत्मनिर्भरता से उनका तात्पर्य एक ऐसी दशा से है, जिसमें समाज विदेशी सहायता पर कम-से-कम निर्भर रहकर अपना विकास एक स्वतन्त्र प्रौद्योगिकी के आधार पर कर सके। कुछ तुलनात्मक संसूचकों (Relativistic Indicators) का सम्बन्ध उन आधारों से है, जो एक विशेष समाज अथवा सामान्य विशेषताओं वाले कुछ विशेष देशों के समूह पर लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, रामकृष्ण मुखर्जी ने भारत के संदर्भ में सामाजिक विकास के कुछ ऐसे संसूचकों का उल्लेख किया, जिनका सम्बन्ध विशेष लक्ष्यों, प्राथमिकताओं तथा उन्हें प्राप्त करने के तरीकों से है। एक विशेष देश के साधनों और परिस्थितियों के अनुसार यह लक्ष्य, प्राथमिकताएं तथा उन्हें प्राप्त करने के तरीके एक-दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal) ने अपनी पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में आधुनिकीकरण से सम्बन्धित जिन संसूचकों को प्रस्तुत किया, वे भी तुलनात्मक संसूचकों की प्रकृति को ही स्पष्ट करते हैं। इनका विस्तृत उल्लेख हम आधुनिकीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत करेंगे।

सतत विकास

सतत विकास को धारणीय, दीर्घकालीन, चिरस्थायी तथा टिकाऊ विकास जैसे शब्दों से भी सम्बोधित किया जाता है। विकास के विभिन्न प्रतिमानों में सतत विकास की अवधारणा से सम्बन्धित विचार सन् 1970 के बाद आरम्भ हुए । इस समय यह महसूस किया जाने लगा कि विकास की प्रकृति से सम्बन्धित वर्तमान में होने वाले प्रयत्नों ने मानवता को एक उन्नत दशा में ले जाने की अपेक्षा इसे अधिक हानि पहुंचाई है । प्राकृतिक संसाधन जो हमारे जीवन के वास्तविक स्रोत हैं, उनका विकास के नाम पर इस बुरी तरह दोहन होने लगा कि इससे एक ओर हमारा पारिस्थितिकीय सन्तुलन बिगड़ने लगा, तो दूसरी ओर वायु और जल से सम्बन्धित प्रदूषण इतना अधिक बढ़ गया कि हम इस दशा को केवल एक मूकदर्शक की तरह देखते रहे। विकास के लिए, जिस ऊर्जा का विशेष महत्व है, उसी ऊर्जा के संकट ने मानव विकास को अवरुद्ध कर दिया। इन दशाओं के फलस्वरूप समाजविज्ञानियों का ध्यान विकास के एक ऐसे उपागम की ओर आकर्षित होना आरम्भ हुआ, जिससे इस तरह के संकटों के प्रभाव को कम किया जा सके। यहीं से सतत विकास की अवधारणा का प्रादुर्भाव होना आरम्भ हुआ । सतत विकास वह पद्धति है, जो एक ओर पहले से अच्छे जीवन-स्तर तथा जीवन अवसरों की वृद्धि से सम्बन्धित है, तो दूसरी ओर विकास की

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com

Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024

CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

प्रक्रिया के दुष्प्रभावों को कम-से-कम करने का प्रयत्न करती है। यह विकास का वह व्यापक रूप है, जो समाज तथा मानव पारिस्थितिकी को स्वस्थ बनाने के प्रति लोगों को संवेदनशील और जागरूक बनाता है तथा विकास को एक ऐसी दिशा देने का प्रयत्न करता है, जिससे प्राणियों के जीवन से सम्बन्धित खतरों को दूर किया जा सके।

सतत विकास की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि आर्थिक वृद्धि की कुछ सीमाएं होना आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए, संसार के सभी भागों में जब हरित क्रान्ति बढ़ने लगी, तो इससे पर्यावरण सम्वन्धी अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाने के कारण इस बात पर विचार किया जाने लगा कि हम मानव तथा जीव जगत के संरक्षण के लिए प्राकृतिक संसाधनों का किस तरह एक बेहतर उपयोग कर सकते हैं। इस समय सन् 1970 के दशक के आरम्भ में इटली के अनेक उद्योगपतियों, व्यापारिक सलाहकारों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के एक समूह ने जिसे 'क्लब ऑफ रोम' कहा जाता है, अपनी एक रिपोर्ट प्रकाशित करके यह चेतावनी दी कि यदि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से उत्पन्न होने वाली रिक्तता तथा बढ़ता हुआ प्रदूषण इसी तरह चलता रहा, तो औद्योगीकरण तथा विकास की प्रक्रिया पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस रिपोर्ट की इस आधार पर आलोचना की जाने लगी कि इसमें प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण सम्बन्धी चुनौतियों से सम्बन्धित मानव की क्षमताओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। यह भी कहा गया कि प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को रोकने से विकासशील तथा अविकसित देशों के विकास की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। एन्थोनी गिडेन्स (Anthony Giddens) ने इस तरह की आलोचनाओं को विस्तार से स्पष्ट करते हुए इन्हें किसी भी रूप में उचित नहीं माना।

आर्थिक वृद्धि की सीमाओं तथा विकास के प्रयत्नों के बारे में जैसे-जैसे पर्यावरण सम्बन्धी चेतना को बल मिलने लगा, सतत विकास की अवधारणा को विकास के क्षेत्र में एक प्रभावपूर्ण अवधारणा के रूप में देखा जाने लगा। इस अवधारणा का स्पष्ट रूप सबसे पहले 'पर्यावरण और विकास के विश्व आयोग' द्वारा प्रकाशित सन् 1987 की रिपोर्ट द्वारा सामने आया। इस आयोग द्वारा सतत विकास को एक ऐसे प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया गया, जिसके द्वारा वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ किसी तरह का समझौता नहीं किया जाता। यहीं से पर्यावरणवादियों, गैर-सरकारी संगठनों तथा स्वयं सरकार का ध्यान सतत विकास की अवधारणा की ओर आकर्षित होना आरम्भ हुआ। इसी अवधारणा पर विस्तार से विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने भी अनेक शीर्ष सम्मेलन आयोजित किए। वास्तव में सतत विकास की अवधारणा का उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों से इस तरह अधिकतम लाभ प्राप्त करना है, जिससे भौतिक, मानवीय तथा पर्यावरण सम्बन्धी सन्तुलन को बनाए रखने के साथ ही के दुर्बल वर्गों की भावी आवश्यकताओं और सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके। इस आधार पर सन् 1998 के 'इकोनॉमिक सर्वे ऑफ इण्डिया' में यह स्पष्ट

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com

Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024

CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

किया गया कि सतत विकास एक ऐसा प्रयत्न है, जो पर्यावरण के प्रति हमारे उत्तरदायित्व तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विकास की प्रक्रिया को एक विशेष रूप देता है।

सतत विकास की परिभाषा

एलेन (R. Alen) ने अपनी पुस्तक 'हाउ टू सेव द न्यू वर्ल्ड' में लिखा है, "सतत विकास वह विचार और प्रत्यन है जिसके द्वारा विभिन्न जीवों एवं पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं का ऐसे ढंग से उपयोग किया जाता जिससे व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अनिश्चित समय के लिए उन्हें पुनः जीवित किया जाता रहे ।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि सतत विकास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणियों तथा पर्यावरण अथवा पारिस्थितिकीय दशाओं का इस तरह संरक्षण किया जाता है जिससे एक लम्बे समय तक विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उनसे सम्बन्धित संसाधनों में कोई कमी न हो सके। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए मार्कन्डेय एवं पीयर्स (Markandeya and Pearce) का कथन है कि "सतत विकास को एक ऐसी दशा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत भविष्य के उपयोग के लिए वर्तमान संसाधनों में कोई कमी न हो सके।" इस प्रकार प्राकृतिक पूंजी के भण्डारण की निरन्तरता को ही हम सतत विकास कहते हैं।

डाले एवं गुडलैण्ड (Daly and Goodland) के अनुसार, "पुनः उत्पन्न करने वाली तथा कार्य में लायी जा सकने वाली क्षमताओं के अतिरिक्त खनिज पदार्थों एवं ऊर्जा की सम्पूर्ण व्यवस्था में समृद्धि से सम्बन्धित विकास ही सतत विकास है ।" इससे भी यही स्पष्ट होता है कि विकास के लिए जो क्षमताएं एवं पदार्थ आवश्यक होते हैं, उन्हें एक लम्बे समय तक बनाए रखना तथा उनका उपयोग करना ही सतत विकास है। इसी विचार का समर्थन करते हुए रेपिटो (Repetto) ने यह स्पष्ट किया कि "विकास से सम्बन्धित जव वर्तमान निर्णय भावी जीवन के मानकों के अनुरक्षण एवं उन्हें बढ़ाने की सम्भावनाओं में बाधा उत्पन्न नहीं करते, तब इसी दशा को हम सतत विकास कहते हैं । "

विश्व संरक्षण रणनीति (World Conservation Strategy) के एक प्रतिवेदन में सतत विकास को परिभाषित करते हुए कहा गया, "सतत विकास वह है जिसके अन्तर्गत सामाजिक तथा पारिस्थितिकीय दशाओं के साथ जीवन्त और भौतिक संसाधनों के दीर्घकालीन उपयोग के साथ ही उनके तात्कालिक लाभों और दोषों को ध्यान में रखा जाता है।" इससे स्पष्ट होता है कि सतत विकास वर्तमान और भविष्य के बीच स्थापित होने वाला एक ऐसा सन्तुलन जिससे वर्तमान विकास के साथ विकास के दीर्घकालीन लक्ष्यों पर भी विशेष ध्यान दिया जा सके।

इंग्लैण्ड में विकास और पर्यावरण पर नियुक्त आयोग के अनुसार, "पर्यावरण तथा आर्थिक विकास के विचार को एकीकृत करना ही सतत विकास है।" इससे पुनः इस तथ्य को बल मिलता है कि सतत विकास वह प्रक्रिया है जिसके

द्वारा वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आगे आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ किसी तरह का समझौता नहीं किया जाता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का समन्वय करते हुए वैलेटमस ने यह निष्कर्ष दिया है कि जिस दशा को हम सतत विकास कहते हैं, उसमें विकास के साथ पर्यावरण के संरक्षण का समान महत्व है। दूसरे शब्दों में, विकास की कोई प्रक्रिया तभी व्यावहारिक होती है जब पर्यावरण विकास में सहयोगी होता है तथा पर्यावरण की सुरक्षा विकास से सम्भव हो पाती है। इस दृष्टिकोण से आर्थिक विकास तथा पर्यावरण का प्रबन्धन एक-दूसरे पूरक दशाएं हैं। इसी आधार पर सन् 2002 में जोहान्सबर्ग में सतत विकास पर होने वाले एक विश्व शिखर सम्मेलन में सतत विकास को आर्थिक विकास, सामाजिक विकास एवं पर्यावरण सम्बन्धी विकास की संयुक्तता के आधार पर स्पष्ट किया गया। इसी अर्थ में सतत विकास को एक दीर्घकालीन, चिरस्थायी तथा धारणीय विकास कहा जाता है।

सतत विकास की विशेषताएं

विभिन्न परिभाषाओं में सतत विकास के जिन पक्षों पर प्रकाश डाला गया है उनसे यह स्पष्ट होता है कि किसी समाज में सतत विकास की प्रक्रिया तभी प्रभावपूर्ण वन सकती है जब सभी व्यक्तियों के जीवन की गुणवत्ता जैसे-स्वास्थ्य, शिक्षा एवं आवास में सुधार लाने के साथ ही इसका पारिस्थितिकीय व्यवस्था पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इस आधार पर सतत विकास की कुछ प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

1. **समावेशित (Inclusiveness)** — सतत विकास वह है जिसमें आर्थिक विकास, मानव विकास तथा पर्यावरणीय विकास का समान महत्व होता है। यह विकास इसलिए भी समावेशी है कि इसमें वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी समान महत्व दिया जाता है । प्रौद्योगिकी का विकास, आर्थिक वृद्धि, जनसंख्यात्मक गुणों में वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, समावेशी परिवर्तन तथा जीवन की गुणवत्ता पर समान ध्यान देना इस तरह के विकास का मुख्य आधार है।
2. **लक्ष्यों और साधनों की परस्पर सम्बद्धता** (Connectivity of Ends and Means) - वर्तमान जीवन में प्रत्येक राष्ट्र के विकास सम्बन्धी लक्ष्य बहुत अधिक हो सकते हैं। उपलब्ध साधनों के सन्दर्भ में प्राथमिकता के आधार पर महत्वपूर्ण लक्ष्यों का चुनाव करना तथा राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर प्रमुख समस्याओं के समाधान में योगदान करना सतत विकास की एक मुख्य विशेषता है। विभिन्न साधनों का उपयोग करते सत्य पर्यावरण के संरक्षण पर ध्यान देना भी लक्ष्यों और साधनों की परस्पर सम्बद्धता के लिए आवश्यक होता है।
3. **साधनों के वितरण तथा अवसरों की समानता** (Equality in Distribution of Means and Opportunities) — इस विशेषता का सम्बन्ध आर्थिक तथा सामाजिक दोनों तरह के विकास से है। यह दशा एक ऐसी व्यवस्था

पर बल देती है जिसके अन्तर्गत देश के आर्थिक तथा भौतिक संसाधनों का वितरण न्यायिक ढंग से हो तथा समाज के प्रत्येक वर्ग को अपना विकास करने के समान अवसर प्राप्त हो सकें। इस प्रकार एक समतामूलक सामाजिक अर्थिक व्यवस्था का विकास और संरक्षण सतत विकास का आधार है।

4. **विवेकशीलता** (Prudence) — सतत विकास का सम्बन्ध एक ऐसी दशा से है जिसमें मानव पारिस्थितिकी तथा आर्थिक विकास के बीच इस तरह सन्तुलन रखा जाता है जिससे समाज के लिए उपयोगी साधनों को पुनः प्रभावपूर्ण बनाकर उनका उपयोग किया जा सके। साधनों को पुनर्जीवित करने का तात्पर्य प्राकृतिक और मानवीय साधनों का इस तरह उपयोग करना है जिससे उनके पूरी तरह समाप्त हो जाने की समस्या पैदा न हो तथा भविष्य में उनका नवीनीकरण करते हुए उन्हें पुनः उपयोग में लाया जा सके। इसी दशा को हम एक विवेकशील सन्तुलन के नाम से सम्बोधित करते हैं।
5. **पर्यावरण की गुणवत्ता** (Quality of Environment) – आज विश्व-सर पर सभी विचारक इस बारे में एकमत हैं कि सतत विकास के लिए पर्यावरण की गुणवत्ता एक महत्वपूर्ण अंग (component) आर्थिक विकास के कारण यदि पर्यावरण मानव-जीवन के लिए हानिकारक बनने लगे तो ऐसा विकास मानव जाति के लिए पहले से भी अधिक हानिकारक हो सकता है। पर्यावरण के संरक्षण द्वारा ही भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ उनकी क्षमताओं में वृद्धि की जा सकती है।
6. **सुरक्षा** (Security) - सतत विकास का क्षेत्र काफी व्यापक होने के बाद भी, यह मुख्य रूप से मानव विकास तथा उसकी सुरक्षा से सम्बन्धित है । इस दृष्टिकोण से यह विकास का वह रूप है जिससे आगे आने वाली पीढ़ियों को एक सुरक्षित भविष्य के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो सकें। यह तभी सम्भव है जव प्राकृतिक पूंजी तथा सामाजिक पारिस्थितिकी के बीच एक आदर्श सन्तुलन बना रहे।
7. **आवश्यकताओं तथा संसाधनों में सन्तुलन** (Equilibrium of Needs and Resources) — प्रत्येक समाज की आर्थिक, सामाजिक तथा प्राकृतिक पूंजी सीमित होती है। यही पूंजी वह संसाधन है जिससे विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि संसाधनों के अनुपात में ही आवश्यकताओं का निर्धारण करना सतत विकास का एक आवश्यक तत्व है। किसी समाज में जब उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति में वृद्धि हो जाने से व्यक्ति अपने संसाधनों से अधिक वस्तुओं अथवा सेवाओं का उपभोग करने लगते हैं तो आवश्यकताओं और संसाधनों का सन्तुलन बिगड़ जाने से भावी आवश्यकताओं को पूरा करना सम्भव नहीं रह पाता ।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

जब हम सतत विकास की बात करते हैं, तो इसके लिए भौतिक पूंजी (Physical Capital) तथा सामाजिक पूंजी (Social Capital) के अर्थ को समझना आवश्यक है। भौतिक पूंजी का सम्बन्ध उत्पादन के नए साधनों के द्वारा आर्थिक वृद्धि को इस तरह प्रोत्साहन देने से है, जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो सके तथा प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग द्वारा अधिक-से-अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सके। पर्यावरण का संरक्षण भी भौतिक पूंजी का ही हिस्सा है। सामाजिक पूंजी किसी समाज में व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की संरचना के रूप में स्पष्ट होती है। इसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता, क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्तियों के ज्ञान और विभिन्न प्रकार की क्षमताओं से होता है। इसे सामाजिक नियमन के एक ऐच्छिक स्वरूप के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सामाजिक पूंजी का सम्बन्ध व्यवहार के ऐसे प्रतिमानों से है, जो इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति स्वयं के हितों पर अधिक ध्यान न देकर उस समुदाय अथवा सामूहिकता के हित में कार्य करे, जिसका वह एक सदस्य है । सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार इसी तरह के लोगों को अधिक सम्मान और पुरस्कार दिए जाते हैं तथा यही वह सामाजिक पूंजी है, जो मानवीय प्रयत्नों को एक सकारात्मक दिशा देती है।

सतत विकास के उद्देश्य

सतत विकास का प्रमुख उद्देश्य एकीकृत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, ऐसे विकास का उद्देश्य किसी एक स्थान क्षेत्र तथा राष्ट्र के विकास तक ही सीमित नहीं होता बल्कि व्यापक रूप से इसकी प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय होती है। इस दृष्टिकोण से ऐसे विकास का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन लक्ष्यों को प्राप्त करना है जिनसे भौतिक तथा मानवीय संसाधनों की निरन्तरता को बनाए रखने के साथ ही पर्यावरण का समुचित संरक्षण किया जा सके। इस आधार पर सतत विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं :

1. एक ऐसे विकास को प्रोत्साहन देना जो अपनी प्रकृति से समावेशित तथा एकीकृत हो ।
2. आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विकास, मानवीय विकास, राजनीतिक संस्थाओं, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग तथा पर्यावरण के बीच सन्तुलन स्थापित करके उनके माध्यम से मानवीय विकास में वृद्धि करना ।
3. (3) एक निर्धारित अवधि के अन्दर विकास सम्बन्धी लक्ष्यों को प्राप्त करना तथा प्राकृतिक परिसम्पत्तियों के भण्डार को इस तरह बनाए रखना जिससे आगे आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं पूरा किया को जा सके।
4. जनसाधारण के जीवन स्तर में इस तरह सुधार करना जिससे प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य, आवास तथा आजीविका के समुचित अवसर प्राप्त होते रहें ।
5. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक साधनों एवं आर्थिक तन्त्र का इस तरह नियमन करना जिससे विभिन्न आर्थिक संस्थाओं एवं संगठनों के बीच एक प्रभावी सहयोग विकसित हो सके।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

6. ऐसी नीतियों को लागू करना जिससे देश के अन्दर तथा बाहर शान्ति की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिल सके। इसके लिए विनाशकारी युद्धों तथा उपकरणों के उत्पादन की सम्भावना को कम-से-कम करना ।
7. (7) विभिन्न देशों के बीच आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण करना तथा निर्धन देशों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि करना । सतत विकास की योजना के विभिन्न पक्ष (Aspects of Scheme of Sustainable Development)

अब यह महसूस किया जाने लगा है कि सतत विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे कुछ विशेष प्रयत्नों के द्वारा ही प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। सतत विकास के लिए अनेक प्रयत्नों की एक व्यवस्थित योजना की आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों ने अनेक ऐसे सुझावों का उल्लेख किया है जिनके आधार पर सतत विकास की रणनीति को सफल बनाया जा सकता है।

1. समाज या राज्य द्वारा प्राथमिकता के आधार पर अपनी आवश्यकताओं की पहचान करके इन्हें करने के लिए ऐसे निर्णय लेना जो विवेक पर आधारित होने के साथ ही दूसरे देशों के लिए हानिकारक न हों।
2. विभिन्न प्राथमिकताओं की पहचान करने के लिए विशेषज्ञ अध्ययन-दलों तथा आयोगों की नियुक्ति करना जिससे उनके द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर विकास के मार्ग पर आगे बढ़ा जा सके ।
3. पृथ्वी और भूमण्डल की जीवन-शक्ति की पहचान करके उसका इस तरह संरक्षण करना जिससे वह मानव विकास में योगदान कर सके।
4. प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह उपयोग करना जिससे उनका कम-से-कम क्षरण हो तथा भावी उपयोग के लिए उन्हें सुरक्षित रखा जा सके।
5. आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करना ।
6. सम्पूर्ण मानव जाति में पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना तथा ऐसे प्रयास करना जिससे पर्यावरण सम्पूर्ण मानव विकास में सहयोगी बन सके। इसके साथ ही उन प्रविधियों और साधनों को विकसित करना जिससे पर्यावरण का समुचित संरक्षण हो सके ।
7. मानव जीवन की गुणवत्ता में इस तरह वृद्धि करना जिससे सभी लोगों की कार्यकुशलता में वृद्धि हो सके तथा श्रम के प्रति व्यक्तियों की निष्ठा को बढ़ाया जा सके ।
8. सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं में इस तरह सुधार लाना जिससे लोगों की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं को प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा किया जा सके।
9. ऐसे मानवीय मूल्यों में वृद्धि करना जिसकी सहायता से मानवीय महत्व को स्पष्ट करके हिंसा में कमी लायी जा सके। यह कार्य सार्वभौमिक सहभागिता के सिद्धान्त के आधार पर करना आवश्यक है।

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

10. विश्व के धनी और निर्धन राष्ट्रों में व्याप्त असमानताओं को दूर करने का प्रयत्न करना ।
11. राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी लोचपूर्ण संस्थाओं की स्थापना करना जिससे प्रत्येक राष्ट्र की प्रमुसत्ता का सम्मान करने के साथ ही समानता पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि की जा सके।
12. सैन्य शक्ति के विस्तार को रोकना तथा अवैध और संगठित हिंसा जैसे आतंकवाद पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करना ।

सतत मानवीय विकास

पिछले कुछ वर्षों से सतत विकास की अवधारणा तथा आवश्यकता को स्पष्ट करने में 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' (UNDP *i.e,* United Nations Development Programme) का विशेष योगदान रहा है। इस कार्यक्रम के द्वारा विकास के मानवीय पक्षों तथा लोगों की पसन्द और क्षमताओं पर आधारित विकास के रूप की इस तरह विवेचना की गई, जिसका वर्तमान और भावी पीढ़ियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। यू. एन. डी. पी. के द्वारा सतत विकास की जगह 'सतत मानवीय विकास' (Sustainable Human Development) शब्द का प्रयोग करते हुए इसे विकास के एक ऐसे नए प्रतिमान के रूप में स्पष्ट किया गया, जिससे वर्तमान युग की बढ़ती हुई चुनौतियों का सामना किया जा सके। आज हम समकालीन दशाओं के सन्दर्भ में जब विकास की बात करते हैं, तब इससे सम्बन्धित परम्परागत एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य को समझना आवश्यक हो जाता है।

विकास का परम्परागत परिप्रेक्ष्य अपनी प्रकृति से रेखीय (linear) है । इसका तात्पर्य है कि कुछ समय पहले तक यह माना जाता रहा था कि विकास का तात्पर्य उन देशों की विशेषताओं का अनुकरण करना जो हमसे बहुत आगे हैं। इस अर्थ में विकसित देशों से पूंजी और नई प्रौद्योगिकी को प्राप्त करना विकास के एक साधन के रूप में देखा गया। इसी का परिणाम था कि विकसित देशों ने अपनी परम्पराओं को छोड़कर में व्यवहार के नए प्रतिमानों को ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही भौतिक पूंजी के क्षेत्र अधिक-से-अधिक विनियोजन करना विकास के मानदण्ड के रूप में देखा जाने लगा। इसके फलस्वरूप मानवीय कारकों की इस तरह उपेक्षा होने लगी कि यह लक्ष्य हाशिए पर चला गया। इसके अतिरिक्त विकास परम्परागत परिप्रेक्ष्य ने एक अल्पकालीन परिवर्तन पर ही अधिक जोर दिया। सतत विकास का वर्तमान परिप्रेक्ष्य परम्परागत परिप्रेक्ष्य से इस अर्थ में भिन्न है कि यह विकास के दीर्घकालीन लक्ष्य पर अधिक बल देता है। साथ ही यह इस मान्यता पर आधारित है कि दूसरे देशों का अनुकरण करने की जगह अपने ही देश या समुदाय में नवाचारों को विकसित करने की क्षमता उत्पन्न की जाए। इस तरह के नवाचार अतीत के अनुभवों पर ही आधारित होते हैं। इस दृष्टिकोण से परम्परा हमारे लिए एक बोझ नहीं है, बल्कि एक उपयोगी सम्पत्ति है । इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार, समाज में अतीत के अनुभवों का विशेष महत्व होता है। इसके

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

अन्तर्गत मानवीय कारकों को केन्द्रीय तत्व मानते हुए यह स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक विकास, शिक्षा, विभिन्न संस्थाओं की रचनात्मकता तथा पर्यावरण के संरक्षण से ही सही अर्थों में मानवीय विकास सम्भव है। ऐसे विकास की प्रकृति भौतिक और सामाजिक दोनों तरह की होती है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा दी गई परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है. " सतत मानवीय विकास व्यक्तियों की रुचियों और क्षमताओं का वह व्यापक रूप है, जिसके द्वारा भौतिक तथा सामाजिक पूंजी का निर्माण समताकारी आधार पर इस तरह किया जाता है, जिससे वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ ही भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं के बारे में किसी तरह का समझौता नहीं किया जाता। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि सतत विकास वह है, जिससे सम्बन्धित दशाओं का निर्धारण सामूहिक हित में किया जाता है। यह वह दशा है, जिसमें सामूहिक क्रियाओं की प्रकृति स्वयं लोगों की इच्छाशक्ति और संकल्प से प्रभावित होती है, किसी तरह के बल प्रयोग से नहीं । इसके साथ ही यह विकास का वह रूप है, जो दीर्घकालीन लक्ष्यों पर आधारित होता है तथा इन लक्ष्यों का निर्धारण वर्तमान और भावी पीढ़ियों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। व्यापक अर्थ में सतत मानवीय विकास सीमित प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, पर्यावरण की सुरक्षा तथा मानव की आत्मनिर्भरता के संदर्भ में विकास के प्रयत्नों से सम्बन्धित एक विशेष दशा है।

सतत विकास के आलोचनात्मक पक्ष

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस दशा को हम 'विकास' के नाम से सम्बोधित करते हैं, उसका वास्तविक सम्बन्ध सतत अथवा धारणीय विकास से ही है। इसके बाद भी विभिन्न विचारकों द्वारा सतत विकास की अवधारणा को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया उसमें अनेक दोष भी हैं :

a. सर्वप्रमुख आलोचना यह की जाती है कि सतत विकास की अवधारणा से सम्बन्धित उद्देश्य और लक्ष्य इतने व्यापक हैं कि व्यावहारिक जीवन में इनके आधार पर विकास करना बहुत अव्यावहारिक है। आज आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न देश जिस कूटनीति के द्वारा दूसरे से आगे निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसके रहते हुए सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकना बहुत कठिन दिखायी देता है।
b. डॉ. रेड्डी ने लिखा है कि सतत विकास की अवधारणा इतनी अस्पष्ट और बहु- अर्थक है कि इसके आधार पर विकास के लक्ष्यों का निर्धारण कर सकना बहुत कठिन है। बाहरी तौर पर सतत विकास की अवधारणा बहुत लुभावनी दिखायी देती है, लेकिन आन्तरिक रूप से इसका सम्बन्ध आज भी विकसित और ताकतवर देशों की इच्छा से ही है। इसका तात्पर्य है कि जब तक विकसित देशों की मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होता, सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन है।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com

Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024

CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

c. यदि व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि सतत विकास की अवधारणा का उद्भव उन विकसित देशों के माध्यम से हुआ जो अपने प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखकर अल्पविकसित तथा विकासशील देशों को अपने संसाधनों का अधिक-से-अधिक दोहन करने का प्रोत्साहन दे रहे हैं। मध्य एशिया के देशों द्वारा तेल और प्राकृतिक गैस जैसी सम्पदा का अत्यधिक दोहन इस प्रवृत्ति का उदाहरण है। विकसित देश ही पर्यावरण के संरक्षण की सबसे अधिक दुहाई देते हैं, जबकि आज इन्हीं देशों के द्वारा पर्यावरण के लिए सबसे अधिक गम्भीर खतरा पैदा किया जा रहा है।

उपर्युक्त दशाओं के सन्दर्भ में अनेक व्यक्ति ऐसा महसूस करने लगे हैं कि विकसित देशों के आर्थिक तथा राजनीतिक स्वार्थों के कारण सतत विकास भी केवल एक नारा है। यही कारण है कि विभिन्न देशों के बीच संघर्ष और युद्ध जैसी घटनाओं में वृद्धि होने से भावी पीढ़ियों के हितों का प्रश्न धीरे-धीरे पृष्ठभूमि में चला गया है।

निष्कर्ष

सतत विकास केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समानता, पर्यावरण संरक्षण और मानव कल्याण से जुड़ा हुआ है। सामाजिक जागरूकता सतत विकास की आधारशिला है क्योंकि जागरूक समाज ही प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग कर सकता है।

सरकार, शैक्षणिक संस्थानों, सामाजिक संगठनों और नागरिकों को मिलकर कार्य करना होगा ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और संतुलित पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सके। सामाजिक चेतना, शिक्षा और जनभागीदारी के माध्यम से ही सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Briggs, Xavier de Souza, and Elizabeth Mueller and Mercer Sullivan, From Neighborhood to Community: Evidence on the Social Effects of Community Development Corporation. Community Development Research Center, 1997.
2. Ferguson, Ronald F. and William T. Dickens, eds., Urban Problems and Community
3. Development. Brookings Institution Press, 1999. ISBN0-8157-1875-6, ISBN978-0-8157-1875-8
4. Grogan, Paul and Tony Proscio, Comeback Cities: A Blueprint for Urban Neighborhood Revival.
5. Westview Press, 2002. ISBN0- 8133-3952-9, ISBN978-0-8133-3952-8
6. von Hoffman, Alexander, House by House, Block by Block: The Rebirth of America's Urban Neighborhoods. Oxford University Press, 2003, Ppbck. ed., 2004. ISBN0-19-517614-6, ISBN978-0-19-517614-8
7. *James*, *Paul; Nadarajah, Yaso*; *Haive*, *Karen; Stead*, *Victoria* (2012). *Sustainable Communities*, *Sustainable Development*: *Other Paths for Papua New Guinea* (PDF). *Honolulu*: *University of Hawaii Press*.

E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 2, Issue 6, Nov-Dec 2024
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v02i06.1314

8. *Magee*, *Liam; James*, *Paul; Scerri*, *Andy* (2012). "*Measuring Social Sustainability: A Community-Centred Approach"*. *Applied Research in the Quality of Life*.
9. Silverman, Robert Mark. 2003. "Progressive Reform, Gender, and Institutional Structure: A Critical Analysis of Citizen Participation in Detroit's Community Development Corporations (CDCs),"Urban Studies 40(13): 2731-2750.
10. *Sloman*, *Annie*. "*Using Participatory Theatre* in *International Community Development"*. *Community Development Journal (January* 2012). **47** (*1*). *doi:10.1093/cdj/bsq059*.
11. McConnell, Charlie, Community Learning and Development: The Making of an Empowering Profession. Community Learning Scotland/PAULO, 2002, ISBN0 947919 75 9
12. An Overview of the Major Asset Building and Community Development Literatures - Marcia E. Kingslow& Carol Horton Robert Fisher and Peter Romanofsky, *Community Organizing for Urban Social Change*: A *Historical Perspective* (Greenwood Press, 1981). ISBN978-0-313-21427-1